P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-4* (Part-1) December- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

हिन्दी भाषाः विश्व में बढ़ता दायरा

सुशीला
सहायक प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
चौधरी बंसीलाल
विश्वविद्यालय,
भिवानी, हरियाणा

सारांश

भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती है। विचारों का आदान–प्रदान भाषा द्वारा ही सम्भव हो सकता है। हिन्दी भाषा भी आधुनिक समय में अपना प्रचार–प्रसार करने को प्रयासरत है। अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक संस्थानों में बढ़ते हिन्दी भाषा के कदम। बाजारवाद से बढ़ता हिन्दी का दायरा। प्रवासी साहित्य अर्थात् हिन्दी भाषा के दायरे को बढ़ाने में विदेशों में रहने वाले भारतीयों का भी बड़ा योगदान है। अनुवाद से भी हिन्दी भाषा का दायरा बढ़ रहा है। हिन्दी की कई कालजयी रचनाओं को अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में ही हुआ है। इससे भी हिन्दी भाषा का दायरा बढ़ा है।

मुख्य शब्द : दायरा, समक्ष, प्रवासी, शैली, विश्वव्यापी, प्रतिस्पर्धा, उपभोक्ता।

प्रस्तावना

वैश्वीकरण के इस दौर में हिन्दी भाषा भी पीछे नहीं है। भाषा को लेका हमारे मन में विभिन्न प्रकार के विचार आते रहते हैं कि हम किस प्रकार हिन्दी भाषा को विश्व पटल पर अंकित करने में सफल हों। इसीलिए हिन्दी भाषा को विश्व भाषा बनाने के लिए समय–समय पर संगोष्ठियों एवं कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है।

अध्ययन का उद्देश्य

हमारा उद्देश्य हिन्दी को विश्व भाषा का दर्जा दिलाने का है और भविष्य में हमें हिन्दी भाषा के प्रति ये स्वप्न हमें साकार होता हुआ नज़र आ रहा है।

किसी भी राष्ट्र का कार्य उसकी भाषा के बिना नहीं चल सकता। जैसा कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा है– ''भाषा के बिना राष्ट्र गूंगा राष्ट्र कहलाता है''।1 इसी को ध्यान में रखते हुए 14 सितम्बर 1949 को भारतीय संविधान सभा के द्वारा सर्वसम्मति से हिन्दी को संवैधानिक एवं व्यावहारिक रूप से राजभाषा के रूप में अपनाकर यह निश्चित किया गया कि राजकाज का सम्पूर्ण कार्यभार इसी के द्वारा वहन किया जाएगा। साथ ही 15 वर्षों तक अंग्रेजी को सह भाषा के रूप में कार्य करने की छूट दी गई ताकि इस अवधि में सभी हिन्दी सीख लें और हिन्दी राजकार्य के लिए पूरी तरह विकसित हो जाए। किन्तु हम सभी इस बात से भली–भाँति परिचित हैं कि 15 वर्ष तो क्या आज 65 वर्ष बीत जाने के बाद भी हिन्दी के राजकार्य हेतु वहीं संघर्ष है, जो 1949 ई. में था। बल्कि 15 वर्षों की इस छूट का आज तक अंग्रेजीदा लोगों ने जो नाजायज फायदा उठाया। परिणामस्वरूप हिन्दी का जो हश्र हुआ, देश में भाषाई संस्कृति के प्रश्न खड़े हो गए।

हिन्दी सिर्फ एक सम्पर्क भाषा ही नहीं है, एक सफ़र भी है। सदियों से एक लम्बा ऐसा सफर जिसमें कई पड़ाव हैं, कई मोड़ हैं। यह सफर पीढ़ियों ने तय किया है। हिन्दी एक ऐसी नदी की मात्रा रही हैं। हिन्दी ने अपने पास आई हर भाषा, बोली, धारा को बेहिचक स्वीकार किया और खुद एक नए रूप में पलती रही है। वैश्वीकरण के इस दौर में हिन्दी ग्लोबल एवं बाजार की भाषा के रूप में पहचानी जाती है तो हिन्दी भी इससे अछूती क्यों रहे? जिस प्रकार अंग्रेजी, स्पेनिश, चीनी और अन्य भाषाएँ खुले रूप में अन्य भाषा के शब्दों को ग्रहण करने के अतिरिक्त अंग्रेजी शब्दों को बहुतायत मात्रा में ज्यों का त्यों लिया जा रहा है। सूचना क्रांति के इस बदलते युग में आज हिन्दी का जो नया मानवीकृत स्वरूप तथा उसका जो नया भाषाई परिदृश्य हमारे सामने उपस्थित हुआ है। समीक्षकों ने इसे बिगड़ी हुई या रीमिक्स हिन्दी के रूप में चिन्हित किया है। हिन्दी का यह चेहरा वस्तुतः हिंगलिश का रूप है।

क्षेत्रीय भाषाएँ एवं हिन्दीः– ''प्रान्तीय ईर्ष्या–द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता हिन्दी के प्रचार–प्रसार से मिलेगी, उतनी किसी दूसरी चीज़ से नहीं मिल सकती। अपनी प्रान्तीय भाषाओं की भरपूर उन्नति कीजिए। उसमें कोई बाधा नहीं डालना चाहता और न हम किसी की बाधा को सहन ही कर सकते

हैं। परन्तु सारे प्रान्तों के लिए सार्वजनिक भाषा का पद हिन्दी को ही मिला है।''[2]–सुभाष चन्द्र बोस

भाषा केवल हमारे विचारों एवं भावों को व्यक्त करने का साधन ही नहीं होती वरन् वह हमें संस्कारों से भी जोड़ती है। जब हम इतिहास को देखते हैं तो हिन्दी पर हमें गर्व होता है, क्योंकि हमारी आज़ादी की लड़ाई में हिन्दी भाषा का बहुत बड़ा योगदान रहा है। गाँधी जी गुज़राती जानते थे, किन्तु उन्होंने हिन्दी के सम्पर्क भाषा के महत्त्व को समझकर आज़ादी की लड़ाई में पूरे देश के लोगों को सम्मिलित करने की भावना को समझकर हिन्दी के माध्यम से ही अपने आन्दोलन को चलाया। यहाँ तक कि गैर हिन्दी भाषियों, धर्माचारियों, आचार्यों, समीक्षकों, संतों की हिन्दी सेवा भी कम नहीं रही। प्रसिद्ध पत्रकार विजयदत्त ने कहा है कि ''साहित्य, पत्रकारिता और ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्रों में बड़ी संख्या में हिन्दी भाषी सक्रिय है और हिन्दी की श्रीवृद्धि कर रहे हैं।''[3] बहुभाषी विद्वान् सन्त विनोबा भावे को दक्षिण के भाषायी विरोध का एहसास था और वे इस भाषायी राजनीतिक झगड़े से अच्छी तरह परिचित भी थे। उन्होंने अत्यन्त हृदयग्राही ढ़ंग से हिन्दी का पक्ष लेकर दक्षिण के लोगों को समझाते हुए मार्मिक टिप्पणी की है, उस पर शायद ही किसी की असहमति हो। इसको संत विनोबा भावे के ही शब्दों में – ''हिन्दी राष्ट्र भाषा के तौर पर स्वीकार की गई है। दक्षिण को बहुत लाभ होने वाला है। शंकराचार्य की मलयालम, रामनुजाचार्य की तमिल, मध्वाचार्य की कन्नड़ और वल्लभाचार्य की तेलगू भाषा थी। उस समय भारत वर्ष की राष्ट्रभाषा संस्कृत थी। इसलिए उन्होंने संस्कृत भाषा सीखी और सम्पूर्ण उत्तर भारत को जीत लिया। आज वह स्थान हिन्दी भाषा को मिला है। इसलिए वे लोग जितनी जल्दी हिन्दी सीख कर उत्तर को विजय कर लेंगे, उतना ही अच्छा है। इससे उनका भी लाभ होगा और सारे भारत का भी।''[4]

हिन्दी का पहला अख़बार 'उदंत मार्तण्ड' कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। इससे अहिन्दी भाषियों का यह आरोप खारिज हो जाता है कि हिन्दी उन पर जबरन थोपी जा रही है। हिन्दी को पूर्णतया राष्ट्रीय स्तर पर अपनाने से क्षेत्रीय भाषाओं का विकास कभी अवरूद्ध नहीं हुआ, क्योंकि हिन्दी कभी किसी क्षेत्रीय भाषा के टकराव में तो आ ही नहीं सकती। हिन्दी की तो सृष्टि ही विविधताओं के संगम से हुई है। अनेक ऐसी क्षेत्रीय भाषाएँ जो अपना निजत्व रखते हुए भी हिन्दी के साथ घुल–मिल गई है। हिन्दी सभी क्षेत्रीय भाषाओं को अपनी सखी या बड़ी बहन मानकर चलती है। हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं के बीच टकराव की बात तो सोच–समझकर पैदा की गई। आजादी के बाद की राजनीतिक चाल है। ऐसे लोगों ने भाषा के सवाल को वोट के लिए उछालकर अपना उल्लू सिद्ध किया है। वरना हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषाओं के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

हिन्दी का इतिहास हिन्दी के थोपने जैसा नहीं है, बल्कि उन्हें तो चाहिए कि वे सरकारी संवाद में केवल अंग्रेजी की बात नहीं करके भारत की सभी प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं की भलाई होगी, क्योंकि भाषाओं में और उसके प्रयोग करने वालों में कभी भी बैर नहीं होता है। यह बैर तो नेताओं के मन में होता है। यदि बैर होता तो भारत के सभी प्रमुख धार्मिक ग्रंथों एवं हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों, प्रेमचंद, रामचन्द्र शुक्ला, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वृन्दावनलाल वर्मा की कृतियों का दक्षिण के प्रतिष्ठित लोगों के द्वारा अनुवाद नहीं किया जाता। प्रसिद्ध फिल्म साहित्य समीक्षक जयप्रकाश चौकसे ने भी लिखा है, ''जिन दिनों दक्षिण भारत में खूब हिन्दी विरोधी वातावरण रचा जा रहा था, उन दिनों भी दक्षिण के लोगों ने हिन्दी सीखी, क्योंकि उन्हें हिन्दी गीत संगीत में रूचि थी।''[4] इससे यहीं निष्कर्ष निकलता है कि गैर–हिन्दी भाषी नेता भाषाई विवाद को जानबूझ कर खड़ा करके जनता की भावनाओं को भड़का कर अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकते हैं।

अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव की चुनौतीः– अंग्रेजीवाद इस देश के लिए अभिशाप है। यह अभिशाप हर साल प्रकट होता है, फिर भी उसे हम पूतना न मानकर चामुण्डमर्दिनी दुर्गा मान रहे हैं। हिन्दी इस अभिशाप से मुक्त कर सकती है। इसको भारत के लोग अपनी बातचीत और विचार के आदान–प्रदान में प्रयुक्त करते रहे।''[5]

आज एक आज भारतीय के मन में यह भावना पैदा हो गई है कि समाज में सम्पन्न व संस्कारित पद पाने के लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है। यह सोच हमारी मानसिक दुर्बलता की परिचायक है। विशेष रूप से बौद्धिक एवं शिक्षित वर्ग में तो एक प्रकार से हिन्दी के प्रति हीन–ग्रन्थि की भावना पैदा हो गई है। इसी कारण हिन्दी हमारी राजभाषा होते हुए भी उसे आज तक राष्ट्रभाषा का गौरव अभी तक नहीं मिल पाया है। किसी भी प्रश्नपत्र में अंग्रेजी में छुपे हुए प्रश्नों को सही माना जाता है।

हिन्दी रूपान्तरण को क्यों नहीं? क्या हिन्दी भाषा अर्थ ग्रहण करने में सक्षम नहीं है? अभिभावक अपने बच्चों को शिक्षा–दीक्षा अंग्रेजी माध्यम से करवाने के प्रति लालायित क्यों हैं? आज देश में अंग्रेजी सीखने–सिखाने का संक्रामक रोग बढ़ता ही जा रहा है। यदि किसी एक स्त्री का बच्चा अंग्रेजी माध्यम से पढ़ता है तो दूसरी स्त्री के लिए ईर्ष्या का विषय हो सकता है, जो स्वयं ढ़ंग से अंग्रेजी पढ़ और बोल नहीं सकते, उनकी हसरत यही रहती है कि उनका बच्चा इस कला में जरूर महारथी बन जाए। उस समय तो बहुत आश्चर्य होता है, जब अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने वाले बच्चों को बिना सोचे समझे अपने विषयों को रटते हुए देखती हूँ। उन बच्चों को देखकर बरबस धोबी के गधे का चेहरा याद आ जाता है, जो बेचारा निरीह प्राणी बिना किसी प्रतिशोध के अपने मालिक के बोझ को ढ़ोता रहता है, वैसे ही ये निरीह बच्चे अपने अभिभावकों के द्वारा लादे गए अंग्रेजी बोझ को ढ़ोते रहते हैं। लेकिन उनके माता–पिता तो भाव–विभोर होकर बड़े खुश होते हैं, उनके गले में बंधी टाई, यूनिफॉर्म आदि को देखकर जो उनके जीवन और अभिव्यक्ति के अवसर को घोंटती जा रही है।

भारतीय समाज में वर्तमान में पाश्चात्य सभ्यता एवं अंग्रेजी भाषा भारतीयों के मानस पटल पर अपना वर्चस्व कायम करती जा रही है। समाज में अंग्रेजी चिन्तन के प्रति रूझान बढ़ता ही जा रहा है तथा राजभाषा हिन्दी

का स्थान गौण होता जा रहा है। जिस तरह हमारे देश के दो नाम हैं इण्डिया और भारत उसी प्रकार हमारी राजभाषा भी दो होकर रह गई है– अंग्रेजी और हिन्दी। पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल विहारी वाजयेयी के शब्दों में, ''हिन्दी समेत भारतीय भाषाओं के लिए यह ख़तरा खड़ा हो गया है कि लोगों में अंग्रेजी माध्यम से अपने बच्चों को पढ़ाने की ललक तेजी से बढ़ रही है। गरीब आदमी भी अपने बच्चों को मंहगे अंग्रेजी स्कूलों में भेजना चाहता है। उसे डर है कि यदि उसके बच्चे ने प्रारम्भ से ही अंग्रेजी बोलना नहीं सीखा तो वह प्रगति की दौड़ में पिछड़ जायेगा और कभी भी वह बड़ा अफ़सर या बड़ा आदमी नहीं बन सकेगा।''[6] अंग्रेजी भाषा सीखना और उसे उचित स्थान पर अपने कामकाज़ में प्रयोग करना बुरी बात नहीं, लेकिन अपने हर कार्य के लिए अंग्रेजी भाषा और संस्कृति को तवज्जो देना सर्वथा अनुचित है। जो लोग अपने यहाँ व्यापारिक उद्देश्यों के लिए आए थे, उन्होंने अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए अपनी भाषा को भी हमारे ऊपर थोप कर इस कहावत को चरितार्थ कर दिया कि, ''आई तो थी छाछ लेने बन बैठी घर की मालकिन।''[6] तब से लेकर आज तक जिन दो प्रतिशत अंग्रेजीदा लोगों ने इसमें सहयोग दिया वे आज भी नहीं चाहते कि राजकाज का सम्पूर्ण कार्य हिन्दी में हो। क्योंकि इससे उनका उल्लू सीधा नहीं होगा। सत्ता एवं तंत्र पर कब्जा जमाए रखने के लिए ये अंग्रेजीदा लोग कभी नहीं चाहते कि देश में हिन्दी का विकास हो, क्योंकि इससे इनके बिस्तर गोल हो जाएगें और आम आदमी की भी सत्ता में भागीदारी बढ़ जाएगी।

वस्तुतः औपनिवेशिक मार इतनी करारी होती है कि आज आज़ाद होकर भी मानसिक गुलामी बरकार है। कैसा लगता है जब हमारे देश के नेता, अभिनेता, बुद्धिजीवी वर्ग विदेश में ही नहीं देश में भी हिन्दी जानते हुए भी पराई भाषा अंग्रेजी में बोलते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि जैसे सांस्कृतिक धनिकों की जमात में भारत ने किराए के कपड़े पहन रखे हों। आज अंग्रेजी दा लोगों के द्वारा समाज में अंग्रेजी का हौवा इस कदर खड़ा कर दिया गया है कि हिन्दी भाषा को साँस लेने में भी कठिनाई का अनुभव हो रहा है। इनका तर्क है कि अंग्रेजी एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है, उसको जाने बिना अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हम पिछड़ जाएगें और हमारा विकास नहीं होगा। जबकि स्थिति इसके विपरीत है। आज बाजारवाद एवं भूमण्डलीकरण के कारण हिन्दी की जो सत्ता स्थापित हुई है। उसमें सबसे बड़ी बात यहीं है कि वैश्विक समुदाय में हिन्दी के बिना काम नहीं चल सकता। एक बड़ा उदाहरण तो इसी बात का है, आज प्रमुख अंग्रेजी शब्दकोशों में लगभग 1000 शब्द ऐसे हो चुके हैं, जो भारतीय मूल (हिन्दी, संस्कृत) आदि के हैं तथा ऐसे शब्दकोशों में हिन्दी शब्दों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। आज बाजार, गुरू, नमस्कार, पण्डित, शाबास आदि कितने ही शब्द हैं, जिन्हें विश्व के सभी देशों के प्रबंध, प्रशासकीय राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में पर्याप्त सम्मानित स्थान मिल चुका है। कुछ चर्चित शब्द जैसे – आर्यन, चक्र, गुरू, पण्डित, निर्वाण, पर्दा, बिन्दी, साड़ी, समोसा, घी, बासमती, कबाब, चटनी आदि अंग्रेजी शब्दकोशों में सम्मिलित हो चुके हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक संस्थानों में बढ़ते हिन्दी के कदम

''हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है, जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में आसीन हो सकती है।'' मैथिलीशरण गुप्त

विश्व स्तर पर हिन्दी भाषा के प्रति विश्व–समुदाय की जो रूचि बनी है, उसके लिए हम मैक्स वेबर एवं विलियम जोन्स की देन को नहीं भुला सकते हैं। इसी तरह सन् 1698 ई. में डच कम्पनी के अध्यक्ष जोसुआ केटलार ने जब सर्वप्रथम हिन्दी का व्याकरण लिखा तब सम्पूर्ण यूरोप में हिन्दी भाषा के बारे में जानने की होड़ सी मच गई। यूरोपियन देशों विशेष रूप से जर्मनी तथा इटली पर संस्कृत के पश्चात् धीरे–धीरे हिन्दी भाषा का इतना गहरा प्रभाव रहा कि भारतीय दर्शन एवं संस्कृति की अमिट छाप वहाँ देखने को मिलती है। हिन्दी के वैश्वीकृत रूप का विराट–स्वरूप पिछले पचास वर्षो में यूरोपियन देशों के विभिन्न विश्वविद्यालयों में देखने को मिल रहा है। भारत से बाहर लगभग 165 देशों के विश्वविद्यालयों एवं शैक्षणिक संस्थानों में हिन्दी के अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था है। अमेरिका के विश्वविद्यालयों में से कैलिफोर्निया, शिकागो, टैक्सास, कोलाम्बिया, फ्राँस के सौबन विश्वविद्यालय, चेक गणराज्य के प्राग स्थित चार्ल्स विश्वविद्यालय, यूगोस्लाविया के बेलग्रेड, रोमानिया के बुखारेस्ट, बेल्जियम जैसे छोटे से देश के बेटे और ल्यूमेन, आस्ट्रेलिया के मेलबोर्न और केनबरा आदि कई यूरोपियन देशों में हिन्दी अध्ययन के कई कोर्स चलाए जा रहे हैं। इन सब विश्वविद्यालयों में विदेशों का युवा वर्ग हमारी भाषा को पढ़ने में रूचि ले रहा है।

आज यूरोपियन लोग भारतीय फिल्मों, धारावाहिकों से ही नहीं बल्कि, गोदान, त्यागपत्र, मैला आँचल जैसे उपन्यासों से भी भलीभाँति परिचित हो गए हैं। इन जैसे अनेक प्रसिद्ध रचनाओं का अनुवाद विभिन्न देशों के विश्वविद्यालयों में हो चुका है। इस सच से हम भलीभाँति परिचित हैं कि अंग्रेजी ने भारत में आकर अपनी उन्नति ऐसे ही नहीं की उन्होंने अपनी उन्नति के बाद हिन्दी की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। इसी कारण आज इंग्लैण्ड 5 में अंग्रेजी के बाद हिन्दी ही सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। पूरे खाड़ी क्षेत्र में लगभग 30 लाख लोग आपस में हिन्दी ही बोलते हैं। एशिया के विभिन्न देशों, यथा– चीन, जापान, थाईलैण्ड, सिंगापुर, म्यांमार, मलेशिया आदि में बसे प्रवासी भारतीय किसी न किसी रूप में हिन्दी की प्रवाहशीलता को बनाए रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। नार्वे, स्वीडन, फिनलैण्ड, डेनमार्क, कनाडा आदि कई देशों में सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी की आवश्यकता महसूस की जा रही है। इन देशों के लोग अपना व्यापार बढ़ाने के लिए भारतीय मूल के लोगों के साथ हिन्दी में व्यवहार करने के लिए आतुर हैं। इसी को लक्ष्य करके प्रसिद्ध समीक्षक जोगेन्द्र सिंह ने लिखा है कि, ''हिन्दी स्वयं में विश्व समाज को समाहित किये हुए है। विश्व की अनेक भाषाओं के शब्द हिन्दी की शैली एवं उसके अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप को विकसित करने में लगे हैं।''[7]

अगर भारत में लगभग 130 करोड़ लोग चाहें तो हिन्दी को और आगे की सशक्त अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बना सकते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी के माध्यम से तकनीकी प्रगति, वैज्ञानिक विकास, व्यापार, खेल के साथ–साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी उच्चतम उपलब्धियाँ हासिल कर सकते हैं। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि विश्व समुदाय में फ्राँस, जर्मनी, जापान, स्विटजरलैण्ड जैसे कई देश हैं, जिनकी विकासात्मक उपलब्धियाँ कम नहीं है। इन देशों को अपना विकास करने के लिए या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक सशक्त देश का स्तर प्राप्त करने के लिए अंग्रेजी की बिल्कुल जरूरत नहीं पड़ी। बल्कि इनमें से कई देश ऐसे हैं, जिनमें अंग्रेजी को बहुत हेय दृष्टि से देखा जाता है।

बाजारवाद से बढ़ता हिन्दी का दायरा

''यह स्वीकार करने में कोई हर्ज नहीं कि आर्थिक उदारीकरण के प्रति उत्साह ने हिन्दी के भविष्य को भी बाजार की शक्तियों के हवाले कर दिया है।''8 रमेश चन्द्र अग्रवाल, चेयरमैन दैनिक भास्कर समूह

बाजार और भाषा की अपनी अलग–अलग सत्ता है, फिर भी इन दोनों में गहरा सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध प्राचीनकाल से लेकर आज तक चला आ रहा है। भाषा चाहे कैसी भी हो, वह बाजार के लिए रीढ़ की हड्डी होती है, क्योंकि भाषा के माध्यम से ही बाजार का अस्तित्व निर्भर करता है। बाजार अपना रूप भाषा के माध्यम से ही संवारता है। भाषा के माध्यम से ही बाजार के मोल–भाव, वस्तु के महत्त्व, ग्राहकों की मनोस्थिति, यहाँ तक कि उस देश की सम्पूर्ण वाणिज्यिक गतिविधियों के साथ उस देश की संस्कृति का भी ज्ञान हो जाता है। भाषा बाजार को प्रभावित ही नहीं करती वरन् उसे लाभ–हानि से भी जोड़ती है। इसी से यह प्रश्न हल होता है कि केवल भाषा ही बाजार को प्रभावित नहीं करती वरन् बाजार की भाषा को एक बड़े बाज़ार के रूप में देखा जा सकता है। विशाल हिन्दी जनसमूह के बीच अपना माल खपाने के लिए विश्व की अनेक कम्पनियों को हिन्दी की शरण में चाहे–अनचाहे किसी भी रूप में आना पड़ रहा है। भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप हिन्दी भाषा के विज्ञापनों द्वारा बाजार में कब्जा जमाने की होड़ मची हुई है। व्यापार, उद्योग–जगत में आज हिन्दी का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि मल्टीनेशनल कम्पनियों तक को मजबूरन हिन्दी में अपने विज्ञापन देने पड़ रहे हैं, क्योंकि उन सबको हिन्दी की ताकत का पता चल गया है। हिन्दी की तेजी से फैलता पाठकवर्ग इस भाषा के बाज़ार के लिए एक बड़ी ताकत बनता जा रहा है।

बढ़ते हिन्दी के दायरे में प्रवासी भारतियों का योगदान

आज विश्व के अधिकांश देशों में हिन्दी का जो वैश्वीकृत स्वरूप दिखाई देता है, उसके लिए प्रवासी भारतीयों का अमूल्य योगदान रहा है। हिन्दी भारत की विविध रूपी संस्कृति की सार्थक संवाहक के रूप में देखी जाती है। यह भारत के बाहर भारतीय लोगों की पहचान से सम्बन्ध रखती है। प्रवासी भारतीयों का ही नहीं बल्कि विश्व के लोगों का भारत के प्रति प्रेम के कारण हिन्दी आज सम्पूर्ण विश्व में लोकप्रियता के शिखर को छू रही है। पूरे खाड़ी क्षेत्र में लगभग 30 लाख भारतीय निवास करते हैं। आजीविका हेतु रहने के कारण ये लोग आपसी बातचीत में हिन्दी का ही व्यवहार करते हैं। हमारे पड़ोसी देशों में लगभग 15 से 20 करोड़ लोग ऐसे हैं जो हिन्दी समझते हैं और उनमें अधिकांश हिन्दी बोलना भी जानते हैं। इसी भाषा में प्रवासी भारतीयों का अपनापन नज़र आता है।

अनुवाद से बढ़ता हिन्दी का दायरा

आज विश्व की सभी भाषाएँ आदान–प्रदान के दौर से गुजर रही है और सम्पूर्ण विश्व की भाषाओं के साथ जोड़ने में जो कारक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है, वह अनुवाद है। यद्यपि अनुवाद एक बेहद कठिन विषय है, किन्तु वर्तमान समय में इसका महत्त्व बढ़ गया है। अनुवाद के परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य की कई महत्त्वपूर्ण रचनाओं से विश्व परिचित हो चुका है। आज भारत की प्रमुख समाचार एजेन्सियाँ न केवल समाचार वरन् साहित्यिक, वैज्ञानिक एवं महत्त्वपूर्ण लेख व ग्रंथों के अनुवाद करने की प्रक्रिया में तेजी से जुटी हुई है। जनसम्पर्क एवं सूचनातंत्र के विस्फोट के परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा का जो एक मिला–जुला स्वरूप सामने आ रहा है। वह बहुत कुछ अनुवाद की ही देन है। हिन्दी की अनेक रचनाओं का विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया जा रहा है। अनुवाद प्रक्रिया का एक व्यापक स्वरूप हमारे सामने उपस्थित है और अनुवाद ही एक दैदीप्यमान आलोक है, जिसने हिन्दी के ग्लोबलाईजेशन में अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान दिया है।

निष्कर्ष

वैश्वीकरण के इस दौर में हिन्दी भाषा के स्वरूप, उसके मानवीकृत व्याकरणिक ढाँचे और उसके अस्तित्व को लेकर एक लम्बी बहस आज हमारे देश में चल रही है। मेरी दृष्टि मे कितना वैश्वीकरण एवं बाजारवाद बढ़ेगा, हिन्दी भाषा भी उतनी ही आगे बढ़ेगी। आज भारतीय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा कर रही है एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पादित माल की अधिक से अधिक खपत हो उसी के लिए बाजारमूलक हिन्दी का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है। हिन्दी भाषा का जो आज विराट विश्वव्यापी रूप दिखाई देता है, वह हिन्दी की ताकत का सूचक है। आज जब पूरा विश्व ही सिमट रहा है तो भाषा भी उससे अलग नहीं हो सकती। वर्तमान समय में हर बड़ी कम्पनी का ग्राहक विश्व का प्रत्येक देश है और सवा अरब वाले हमारे देश में किसी कम्पनी को टिकना है तो वह हिन्दी के माध्यम से ही संवाद स्थापित कर सकती है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की हर वस्तु जिसे वे उपभोक्ता तक पहुँचाना चाहते हैं अथवा भारत के गाँव–गाँव, गली–गली तक पहुँचाना चाहते हैं तो हिन्दी की जरिया हो सकती है। सच पूछा जाए तो बहुराष्ट्रीय उपभोक्ता ने ही हिन्दी को वैश्वीकृत स्वरूप प्रदान किया है। इसी का परिणाम है कि हिन्दी आज विशेष प्रयोजन के लिए प्रयुक्त हो रही है, चाहे वह कोई भी क्षेत्र हो जैसे जनसंचार, शिक्षा, विज्ञान, वाणिज्य, प्रशासन या विज्ञापन आदि। हिन्दी के प्रयोजनमूलक चेहरे ने उसको वैश्वीकृत स्वरूप प्रदान किया है। यह वैश्वीकृत रूप केवल आर्थिक विनिमय, व्यापार या विज्ञापन जगत में ही दिखाई नहीं देता, वरन् टी.वी. चैनलों, समाचार–पत्रों, रेडियो,

पत्र–पत्रिकाओं एवं दैनिक जीवन की गतिविधियों के रूप में भी सामने आया है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को लोकप्रिय और विकसित बनाने की दृष्टि से भारतवंशी देशों फ़िजी, गुयाना, मॉरीशस, त्रिनिडाड एवं टोबेगो आदि विभिन्न देशों के दूतावासों में कार्यरत राजभाषा अधिकारियों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। राजभाषा अधिकारियों की सहायता से विश्व के विभिन्न देशों में हिन्दी के प्रचार–प्रसार को बहुत बढ़ावा दिया जा रहा है। हिन्दी के अनेक पाठ्यक्रम धारावाहिकों के प्रसारण, सांस्कृतिक आयोजन के अतिरिक्त अनेक संस्थाएँ भी घनिष्ठता से इन दूतावासों से जुड़कर पर्याप्त सहयोग प्रदान कर रही है। इस सम्बन्ध में जोगेन्द्र सिंह ने लिखा है कि ''हिन्दी परीक्षाओं के संचालन में विदेश मंत्रालय और विदेश स्थित हमारे दूतावासों में हिन्दी की श्रेष्ठ पुस्तकों को भेजता है। भारतीय सांस्कृतिक परिषद की त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका गंगनाचल को भी सम्पूर्ण विश्व में भेजता है।''[9]

सच पूछा जाए तो हिन्दी के वैश्वीकरण स्वरूप के सरकारी प्रयासों में कोई विशेष दमखम दिखाई नहीं देता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को विकसित करने के लिए ढ़ेरों समितियाँ बनी हुई हैं किन्तु वर्ष पर्यन्त समिति की बैठक, भाषण, चाटुकारिता और करोड़ों रूपयों की बर्बादी के अलावा हिन्दी के खाते में कुछ नहीं जाता। भूमण्डलीकरण एवं बाजारीकरण के इस दौर में जहाँ पर हर क्षण मान्यताएँ एवं सिद्धान्त बदल रहे हैं तो हिन्दी भी इससे अछूती नहीं है। हिन्दी भाषा ने ही बाजार को प्रभावित नहीं किया वरन् बाजार ने भी हिन्दी को इस हद तक प्रभावित कर दिया है कि इससे हिन्दी का सौन्दर्य ही नष्ट नहीं हो रहा बल्कि उसके परम्परागत व्याकरणिक ढाँचे को भी प्रभावित कर दिया है। आज टी.वी, एफ.एम., इंटरनेट, एस.एम.एस. आदि कई ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें प्रतिक्षण हिन्दी का एक नया बिगड़ा हुआ शब्द निकल रहा है। वह इस भाषा के व्याकरण सम्मत रूप के साथ खिलवाड़ ही नहीं वरन् हिन्दी को उसके मूल उद्देश्यों से भी दूर करता है। जिस ढ़ंग से बेहिसाब डॉलर या पॉण्ड की पूँजी हिन्दी के बाजार में लगी हुई है, हिन्दी विज्ञापनों की एक–एक पंक्ति की कीमत लाखों में पहुँच चुकी है एवं बाजारवाद की इस दौड़ में व्यापार के नाम पर केवल वस्तु को ही नहीं भाषा को भी बेचा जा रहा है। यदि इसी तरह से वैश्वीकरण के नाम, बाजार की सत्ता हिन्दी पर हावी रही तो वह दिन दूर नहीं जैसा कि डॉ. विजय राघव रेहड़ी ने कहा कि, ''हिन्दी का रूप इस कदर विकृत न हो जाए कि आगे जाकर सूरदास की शब्दावली में 'ऊधो तुम कौन देश का वासी' की तर्ज पर 'हिन्दी तुम कौन देश की वासी', पूछना न पड़ जाए।''[10] इसी प्रकार आचार्य शुक्ल जी ने लिखा है कि, ''भाषा ही किसी जाति (राष्ट्र) की सभ्यता को सबसे अलग झलकाती है। यही उसके हृदय के भीतरी पुर्जों का पता देती है। किसी जाति को अशक्त करने का सबसे सहज उपाय उसकी भाषा को नष्ट करता है।''[11] बाजारीकरण एवं भूमण्डलीकरण के इस युग में वैश्वीकृत हिन्दी के नाम पर जनसंचार माध्यमों द्वारा हिन्दी के नाक–नक्श को संवारने, बनाने का जो कुत्सित प्रयास धड़ल्ले से चल रहा है, वह विश्व भाषा के रूप में हिन्दी के समक्ष एक गम्भीर चुनौती है। इसीलिए प्रसिद्ध मीडियाकर्मी प्रियदर्शन ने ठीक ही कहा है कि, ''हमें हिन्दी से कमाई और उससे हिन्दी की भलाई का फर्क भी समझना चाहिए।'' क्योंकि हिन्दी केवल एक सम्प्रेषण या भाषा के रूप में अभिव्यक्ति का माध्यम भर नहीं, एक विशाल जनसमुदाय की सभ्यता, संस्कृति को जानने, समझने और हमारी अस्मिता से जुड़ा प्रश्न है।

ग्रंथानुक्रमणिकाः–

1. *अटल बिहारी वाजपेयी, हिन्दीः राग विराग, 17 सितम्बर, 1989, साप्ताहिक हिन्दुस्तान।*
2. *ब्रजनारायण अग्रवाल, जरूरी है अंग्रेजी प्रेतबाधा से मुक्ति, 17 सितम्बर, 1989, साप्ताहिक हिन्दुस्तान।*
3. *मृणाल पाण्डे, भाषा की राजनीति और राजनीति की भाषा, 17 सितम्बर, 1989, साप्ताहिक हिन्दुस्तान।*
4. *पण्डित राजा धर्मराज शर्मा, आपका दृष्टिकोण, 4 जनवरी, राजस्थान पत्रिका।*
5. *डॉ. जोगिन्द्र सिंह, अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में हिन्दी का प्रयोग, राजभाषा भारती, जनवरी–मार्च, 2005,राजभाषा विभाग।*
6. *गिरधर राठी, व्यवहार की भाषा कब बनेगी, हिन्दी, 14 सितम्बर, 2007, दैनिक भास्कर, समाचार पत्र।*
7. *रविन्द्र कालिया, सक्षम है हिन्दी की नई पीढ़ी, 14 सितम्बर, 2007, दैनिक भास्कर, समाचार–पत्र।*
8. *डॉ. वेदप्रताप वैदिक, हिन्दी कैसे बने विश्व की भाषा, बहुवचन, अप्रैल–जून, 2007*
9. *बोहल शोध मंजूषा, हिन्दी विशेषांक, 2018, स. डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट।*
10. *दिलीपचारी, दक्षिण का हिन्दी प्रेम, 14 सितम्बर, 2008, राजस्थान पत्रिका।*
11. *अमित विश्वास की हॉलैण्ड में कार्यरत प्रो. मोहनकान्त गौतम से हुई बातचीत के अंश, विदेशों में हिन्दी की दशा एवं दिशा, बहुवचन, अंक– 19, अप्रैल–जून 2008*